मत्स्यपुराण की काव्योपजीव्यता

डा. मनुलता शर्मा

साहित्य में कुछ ऐसी महनीय कृतियाँ होती हैं, जो अपने वर्ण्य विषय, चित्रणचातुरी, रसभावाभिव्यक्ति, सम्प्रेषण सामर्थ्य, रचनाशिल्प आदि दृष्टियों से ऐसे मानक आदर्श समेटे होती हैं कि वे परवर्ती साहित्य सर्जकों के लिये अनुकरणीय हो जाती हैं, प्रकाशस्तम्भवत् हो जाती हैं, जिनके आलोक में वे अपने-अपने ग्रन्थों के सृजनकार्य को सौविध्यपूर्ण ढंग से सम्पन्न करते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से इनकी गणना उपजीव्य काव्यों के अन्तर्गत होती है। ऐसे ग्रन्थों की श्रेणी में **रामायण**, **महाभारत** एवं अष्टादश पुराणों का विशाल साहित्य समाविष्ट है।

उपजीव्यता की दृष्टि से **मत्स्यपुराण** का महत्व भी न्यून नहीं। मत्स्यपुराण में आगत कई प्रसङ्ग ऐंसे हैं जो परवर्ती ग्रन्थकारों के लिए विषयवस्तु की दृष्टि से उपादेय रहे हैं। ऐसे प्रसङ्गों में प्रमुख हैं–

1. पुरुरवा–उर्वशी वृत्तान्त
2. कच–देवयानी, शर्मिष्ठा–ययाति वृत्तान्त
3. सावित्री–सत्यवान वृत्तान्त
4. अन्धकासुर वृत्तान्त
5. त्रिपुरविजय वृत्तान्त
6. तारकासुर–वध वृत्तान्त
7. इक्ष्वाकुवंश वर्णन, वृष्णि, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु, पूरु व अग्निवंश वर्णन
8. महाराज वेन, पृथु व गौ रूपा पृथ्वी का वर्णन
9. मत्स्यावतार वर्णन
10. अंगिरा, भृगु, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, वसिष्ठ, पराशर, अगस्त्य, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, धर्मादि का गोत्र निरूपण।

पुरुरवा–उर्वशी वृत्तान्त

(इला के पुत्र तथा अप्सरा)

बुध एवं पुरुरवा–उर्वशी की कथा भारतीय वाङ्मय में अत्यन्त प्रसिद्ध व चर्चित कथाओं में से एक है। इसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। **ऋग्वेद** के दशम मण्डल के 95वें सूक्त में पुरुरवा–उर्वशी संवाद आगत है, जहाँ पुरुरवा द्वारा उर्वशी के प्रति प्रणय भाव व उसके विरह में व्यथित होना वर्णित है।

शतपथ ब्राह्मण में उर्वशी और पुरुरवा के परिचय तथा गन्धर्वों के छल के कारण उनके विच्छेद का वर्णन मिलता है। वहाँ वर्णन है कि उर्वशी के अन्तर्धान हो जाने पर पुरुरवा उद्विग्न हो उसे खोजता फिरता है। वह उसे कमलों से आकीर्ण जलाशय में अन्य अप्सराओं के साथ जल-पत्ती के रूप में तैरती हुई देखता है। उसकी प्रार्थनाओं से द्रवित उर्वशी अपने को प्रकट करती है व एक वर्ष बाद एक रात्रि भर उसके साथ रहने का वचन देती है। बाद में पुरुरवा गन्धर्वों को सन्तुष्ट कर उनके निर्देशानुसार मनुष्य लोक में स्वर्गीय अग्नि लाकर यज्ञ करता है तथा गान्धर्व रूप प्राप्त कर लेता है जिससे वह सदा के लिए अपनी प्रेमिका के साथ संयुक्त रह सके।[1]

---

1. शतपथ ब्राह्मण, 11/5/1

शतपथ ब्राह्मण की यह कथा किञ्चित् परिवर्तनों सहित **विष्णुपुराण**[1] व **भागवतपुराण**[2] में मिलती है कि मित्रावरुणों का शाप होने से उर्वशी को मर्त्यलोक में रहना पड़ा था। गुणाढ्य की पैशाची प्राकृत में निबद्ध '**बृहत्कथा**' के संस्कृत संस्करण सोमदेव के **कथासरित्सागर** में यह कथा इस रूप में आई है कि–पुरुरवा विष्णुभक्त था तथा विष्णु की आज्ञा से इन्द्र ने उसे उर्वशी का साहचर्य प्रदान किया था। एक दिन इन्द्र सभा में पुरुरवा अप्सराओं के नृत्य संगीत में निमग्न था कि रम्भा से नृत्य में त्रुटि हो जाने पर उसे हँसी आ गई। उसकी इस अशिष्टता से नृत्याचार्य तुम्बरु रुष्ट हो गये और उन्होंने राजा को उर्वशी से वियोग का शाप दे दिया। तपश्चर्या से विष्णु को प्रसन्न कर राजा ने उर्वशी को पुनः प्राप्त किया।[3]

मत्स्यपुराण में पुरुरवा के जन्म, पूर्वजन्म तथा उर्वशी से उसके प्रणयाकर्षण की कथा सविस्तार वर्णित है।[4] वहाँ वर्णन है कि चन्द्रमा के पुत्र बुध व ब्रह्मा की विचित्र मानसी कन्या इला के गर्भ से पुरुरवा का जन्म हुआ था; जो अत्यन्त प्रभावशाली, पराक्रमी व सप्तद्वीपाधिपति हुआ। उसने केशी आदि कोटि संख्याक दैत्यों का वध कर दिया था। उसके पराक्रम से मुग्ध उर्वशी उसकी पत्नी बन गई। एक बार धर्म–अर्थ व काम तीनों उसके पास यह जानने की उत्सुकता में आए कि वह हम तीनों का पालन समान रूप से कैसे करता है? राजा ने तीनों का यथोचित सम्मान किया, पर धर्म की पूजा तनिक अधिक की। इस कारण अर्थ व काम राजा पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गए। अर्थ ने राजा को शाप देते हुए कहा, तुम लोभ के कारण नष्ट हो जाओगे। काम ने भी कहा, गन्धमादन पर्वत पर स्थित कुमारवन में तुम्हें उर्वशीजन्य वियोग से उन्माद हो जायेगा। धर्म ने कहा–राजेन्द्र! तुम दीर्घायु व धार्मिक होगे। तुम्हारी संतति करोड़ों प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होगी और जब तक सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागण की सत्ता विद्यमान है, तब तक उनका भूतल पर नाश नहीं होगा।

उर्वशी के प्रति पुरुरवा का आकर्षण कुछ इस प्रकार हुआ कि एक बार केशी दैत्य द्वारा अपहृत उर्वशी व चित्रलेखा को आकाश मार्ग से ले जायी जाती देखकर पुरुरवा ने वायव्यास्त्र का प्रयोग कर केशी को पराजित किया व इन दोनों अप्सराओं को उसकी पकड़ से मुक्त कराया। उर्वशी तभी से उनके प्रति अनुरक्त थी। एक बार वह भरत मुनि कृत लक्ष्मी–स्वयंवर नामक नाटक में लक्ष्मी का अभिनय कर रही थी कि पुरुरवा को देखकर सब कुछ भूल गई। तब भरत मुनि ने क्रोध के वशीभूत हो उसे शाप दे दिया कि तुम इसके वियोग से भूतल पर पचपन वर्ष तक सूक्ष्म लता के रूप में उत्पन्न होकर रहोगी व पुरुरवा वहीं पिशाच योनि का अनुभव करेगा। तत्पश्चात् पृथ्वी पर उर्वशी ने पुरुरवा का पति रूप में वरण कर लिया व भरत मुनि द्वारा प्रदत्त शाप की निवृत्ति के अनन्तर पुरुरवा के संयोग से आठ पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम थे–आयु, दृढ़ायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, शुचिविद्य व शतायु।

मत्स्यपुराण की यह कथा कालिदास के '**विक्रमोर्वशीयम्**' की कथा से अतिशय साम्य रखती है। ऐसी बलवती सम्भावना है कि कालिदास ने अपने इस नाट्य रूपक (त्रोटक) की कथावस्तु के गुम्फन के लिये मत्स्यपुराण की कथावस्तु का आश्रयण लिया होगा। चूँकि **मत्स्यपुराण** व कालिदास दोनों का ही कालक्रम सम्भावनाओं पर आधारित है, अतः इस विषय में पूर्वापरता के निर्णय के आधार पर ही इन ग्रन्थद्वय की उपजीव्यता का निर्धारण हो सकेगा। **मत्स्यपुराण** का आनुमानिक समय दूसरी शती से लेकर 6ठीं शती के मध्य माना गया है। कालिदास को गुप्तकाल में मानने वालों की दृष्टि में **विक्रमोर्वशीयम्** के प्रथम तीन अध्यायों के लिये कालिदास

1. विष्णुपुराणम्, 4/6 अध्याय
2. श्रीमद्भागवत महापुराण् 9/14/15-19,
3. उद्धृत, महाकवि कालिदास, रमाशंकर तिवारी, पृ. 227
4. मत्स्यपुराणम् - 11, 12, 23, 24 अध्याय

ने निश्चय ही मत्स्यपुराण की कथावस्तु को ग्रहण किया होगा। ई.पू. प्रथम शती में कालिदास की स्थिति स्वीकार करने वाले विद्वानों को एतदर्थ अन्य ग्रन्थों का आश्रयण लेना होगा।

कच-देवयानी व शर्मिष्ठा - ययाति वृत्तान्त

पुराणों में आगत कच-देवयानी एवं शर्मिष्ठा-ययाति प्रसङ्ग काव्यकारों की दृष्टि में काव्य सर्जना हेतु नितान्त रुचि का विषय रहा है। यह प्रसङ्ग **विष्णु पुराण**[1], **वायु पुराण**[2], **श्रीमद्भागवत**[3] एवं **महाभारत**[4] आदि कई ग्रन्थों में वर्णित है। **मत्स्यपुराण** में यह प्रसङ्ग 25-35 अध्याय पर्यन्त सविस्तार वर्णित है। बृहस्पति पुत्र कच देवासुर संग्राम में पराजित देवताओं की प्रार्थना पर दैत्यगुरु शुक्राचार्य से मृत्संजीवनी विद्या सीखने के उपक्रम में उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लेते हैं। वे उनके अन्तेवासित्व में रहते हुए गुरु पुत्री देवयानी को प्रसन्नमना बनाये रखते थे। असुरगण कच के इस शिष्यत्व से अत्यन्त रुष्ट थे। वे अवसर पाकर उसे मारने का अनेकशः उपक्रम करते रहते थे। एक बार उन्होंने कच के टुकड़े कर उन्हें जला दिया व उसकी राख मदिरा में मिलाकर देवयानी के पिता शुक्राचार्य को पिला दी। कच पर प्रसन्न देवयानी उसे इधर-उधर न पाकर व्याकुल हुई व पिता शुक्राचार्य की शरण में गई। शुक्राचार्य ने भी व्याकुल हो कच को आवाज लगाई। प्रत्युत्तर में शुक्राचार्य के ही उदर में स्थित कच ने अपनी उपस्थिति व अपने साथ घटित वृत्तान्त की सूचना दी। देवयानी के बारम्बार अनुरोध पर शुक्राचार्य ने व्यवस्था दी कि कच को वे संजीवनी विद्या सिखायेंगे, तदुपरान्त वह पेट फाड़कर बाहर आ जाएगा व मृत शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या के प्रभाव से जिला देगा। अन्ततः इसी युक्ति का प्रयोग कर कच जीवित हुए। तदनन्तर देवयानी ने कच को पतिरूप में स्वीकार करने की अभिलाषा की, जिसका खण्डन कच ने स्वयं के शुक्राचार्य के उदर से उत्पन्न होने के कारण देवयानी के साथ सहोदर सम्बन्ध हो जाने से कर दिया। अन्ततः क्रुद्ध देवयानी के द्वारा कच द्वारा अधीत संजीवनी विद्या के निष्फल होने का शाप दिया गया। कच ने भी उसकी कामनाओं के असंतुष्ट रह जाने का प्रतिशाप उसे दे दिया।

मत्स्यपुराण में ही 27-35 अध्याय पर्यन्त नहुष पुत्र ययाति व शर्मिष्ठा तथा देवयानी की कथा वर्णित है। यह कथा भी कवियों को उपमानों की दृष्टि से अत्यन्त प्रिय रही है। पति की अत्यन्त प्रियतमा पत्नी का प्रकरण जहाँ कहीं आता है या पिता के प्रति अतिशय निष्ठा का प्रकरण जहाँ उपलब्ध होता है वहाँ शर्मिष्ठा तथा उसके पुत्र पूरु का दृष्टान्त कविगण दिया करते हैं। स्वयं महाकवि कालिदास ने महर्षि कण्व के द्वारा शकुन्तला को दिये गये आशीर्वाद में इसी प्रसङ्ग को उपमानता प्रदान की है-

ययातेरिव शर्मिष्ठा भतुर्बहुमता भव। सुतं त्वमपि सम्राजं सेवपूरुमवाप्नुहि।।

अर्थात् ययाति को जैसे शर्मिष्ठा अत्यन्त प्रिय थी वैसे ही तुम भी पति की अत्यन्त प्रिय बनो। जैसे उसने सम्राट पुत्र पूरु को प्राप्त किया था वैसे ही तुम भी सम्राट पुत्र को प्राप्त करो।

मत्स्यपुराण में यह प्रसङ्ग इस प्रकार वर्णित है कि कच द्वारा संजीवनी विद्या सीख लेने के उपरान्त प्रसन्न मना देवताओं ने इन्द्र से कहा कि अब आपके पराक्रम का समय आ गया है। आप अपने शत्रुओं का संहार कीजिये। इन्द्र भूलोक आए व वहाँ चैत्रवन में जल क्रीड़ारत सुन्दरियों को देखकर उन्होंने वायुरूप होकर उनके वस्त्र तितर-बितर कर दिए। जब कन्याएँ जलक्रीड़ा कर बाहर निकलीं तो मिले हुए कपड़ों में दानवराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा

1. विष्णुपुराणम् , 4/10 अध्याय
2. वायुपुराणम्, 1/155, 65/84, 98/20, 38/68
3. श्रीमद्भागवतमहापुराण् , 9/18, 19,20
4. महाभारत, आदि पर्व 76-85 अध्याय पर्यन्त

ने देवयानी के वस्त्र पहन लिये। इस वस्त्र परिवर्तन को लेकर उसका दानवगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से घोर वार्क्कलह हुआ। शर्मिष्ठा ने क्रुद्ध हो उसे अनेक अपशब्द कहे व क्रोधावेश में उसे पास स्थित कुएँ में ढकेल दिया व अपने नगर लौट आयी। संयोगवशात् उसी समय नहुष–पुत्र ययाति उस स्थान पर आए। वे शिकार से परिश्रान्त थे तथा प्यास से व्याकुल हो रहे थे। वे उस जलशून्य कूप को देखने लगे। उन्हें वहाँ तेजस्विनी देवयानी दिखायी दी। परिचय पूछे जाने पर उसने पूरा घटनाक्रम बताया। ययाति ने उसका हाथ पकड़कर उसे कुएँ से बाहर निकाला व अपने नगर चले गये। तदनन्तर देवयानी ने अपनी धात्री घूर्णिका के माध्यम से पिता शुक्राचार्य को सम्पूर्ण घटना बतलाई व वृषपर्वा के नगर में पैर न रखने का सङ्कल्प भी सूचित करवाया। क्रुद्ध शुक्राचार्य ने दानवराज वृषपर्वा से राज्य परित्याग कर देने की बात कही। परिणामत: राजकन्या शर्मिष्ठा को देवयानी के कहने पर अपनी एक सहस्र दासियों के साथ उसका दासीत्व स्वीकार करना पड़ा। देवयानी का ययाति के साथ विवाह हुआ व शर्मिष्ठा अपनी एक सहस्र दासियों के साथ ययाति के नगर गई। दैववश शर्मिष्ठा ने एकान्त में दृष्टिपथ में आए ययाति से ऋतुदान देने की प्रार्थना की। राजा ने शर्मिष्ठा का सत्कार कर धर्मानुसार उसे अपनी भार्या बनाया। इधर देवयानी को यह वृत्तान्त ज्ञात न हो सका। कालक्रमानुसार देवयानी को ययाति से 'यदु' व 'तुर्वसु' ये दो पुत्र प्राप्त हुए व शर्मिष्ठा के तीन पुत्र हुए– द्रुह्यु, अनु व पूरु। एक बार वन में विहार करते समय देवयानी ने तीन अत्यन्त तेजस्वी बालकों को देखा जो रूप व तेज में राजा ययाति की अनुकृति लग रहे थे। देवयानी ने उन बालकों से जब उनका परिचय पूछा तो उन्होंने अङ्गुलि संकेत से ययाति को अपना पिता व शर्मिष्ठा को माता बतला दिया। क्रुद्ध देवयानी ने राजा को वाक्शरों से आहत किया व पिता शुक्राचार्य के पास जाकर बतलाया कि अधर्म ने धर्म को जीत लिया। नीच की उन्नति हुई व उच्च की अवनति। शर्मिष्ठा के ययाति से तीन पुत्र हुए हैं व मेरे दो। महाराज ययाति ने मर्यादा का उल्लंघन किया है। शुक्राचार्य ने ययाति को बूढ़ा हो जाने का शाप दे दिया। ययाति के प्रार्थना करने पर उन्होंने यह व्यवस्था दी कि यदि तुम चाहो तो दूसरे से यौवन लेकर अपनी वृद्धावस्था उसको सौंप सकोगे। तुम्हारा जो पुत्र तुम्हें अपनी युवावस्था देगा, वही राजा होगा, साथ ही दीर्घायु, यशस्वी व अनेक सन्तानों से युक्त। राजा ने देवयानी से उत्पन्न दोनों ज्येष्ठ पुत्रों यदु व तुर्वसु से तथा शर्मिष्ठा के ज्येष्ठ पुत्रों द्रुह्यु व अनु से प्रार्थना की परन्तु उन सभी ने अस्वीकार कर दिया। पाँचवें कनिष्ठ पुत्र पुरू ने प्रसन्नतापूर्वक अपना यौवन उन्हें सौंप दिया व उनका वार्द्धक्य ले लिया। उसके द्वारा प्रदत्त यौवन से ययाति ने दीर्घकाल तक सुखोपभोग किया व अन्त में पूरु को उसका यौवन प्रदान कर राज्याभिषिक्त भी किया।

रोचकता की दृष्टि से यह समस्त पौराणिक आख्यान जनमानस में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। इसी कारण रचनाकारों ने भी इसे अपनी लेखनी का विषय बनाया। संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में इस कथानक को आश्रय बनाकर कई ग्रन्थ लिखे गये। बारहवीं शती में रुद्रदेव ने '**ययातिचरितम्**' नामक सफल नाटक का प्रणयन किया था। उन्नीसवीं शती में वल्लिसहाय ने इस कथानक को आधार बनाकर '**ययाति देवयानी चरितम्**' व '**ययातितरुणानन्दम्**' नामक दो रूपकों की रचना की थी।

उन्नीसवीं शती के ही (1890–1911 ई.) अग्रगण्य रचनाकारों में काव्योत्कर्ष के लिए विख्यात नारायण शास्त्री ने '**शर्मिष्ठाविजयम्,** नामक रमणीय नाटक का प्रणयन किया था। 20वीं शती में नेपाल निवासी कृष्णप्रसाद शर्मा धिमिरे ने '**ययातिचरितम्**' नामक रचना लिखी। इसी शती में अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने '**कचाभिशापम्**' (नाट्यपञ्चगव्यम्) नामक नाटक की रचना की। सन्निधानम् सूर्यनारायण शास्त्री रचित '**कचदेवयानीयम्**' नामक रचना भी प्रकाश में आई है।

हिन्दी में '**ययाति**' शीर्षक से अत्यन्त रोचक व ज्ञानवर्धक पौराणिक उपन्यास लिखा गया। डॉ. सरोज बिसारिया की लेखनी को भी यही प्रसंग अनुकूल लगा। उन्होंने '**तुम भी बोलो शर्मिष्ठा**' नाम से हिन्दी में नाटक लिखा जिसका सफल मंचन अनेकधा हुआ। बंगला भाषा में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता '**बिदाय-अभिशाप**' की रचना भी कचदेवयानी कथानक पर ही आधारित है, जो 'कथा एवं काहिनी' पुस्तक के 'काहिनी' अंश में संकलित है।

सावित्री-सत्यवान वृत्तान्त

मत्स्यपुराण का एक अन्य कथांश उपजीव्यता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके 208 अध्याय से लेकर 214 अध्याय पर्यन्त सावित्री-सत्यवान् की कथा सविस्तार वर्णित है।

मद्रदेश के शाकलवंशीय नरेश अश्वपति की सर्वाङ्ग सुन्दरी पति-परायणा पुत्री सावित्री व राज्यविहीन नेत्रान्ध नृपति द्युमत्सेन के अल्पायु पुत्र सत्यवान् के विवाह एवं विवाह के एक वर्ष के भीतर ही राजकुमार के मृत्यु को प्राप्त होने की नारदीय भविष्यवाणी, इस भविष्यत् वाक् को मिथ्या सिद्ध करने हेतु अनन्य पातिव्रत्य की निष्ठा से सम्पन्न सावित्री की यमराज का अनुगमन करने व उनसे चातुर्य से सभी मनोवांछित कामनाओं को वर रूप में प्राप्त कर लेने की यह पौराणिक कथा जन-मानस में अत्यन्त लोकप्रिय है। अनेक रचनाकारों की लेखनी ने इस कथानक के मसि से सुन्दर रचनाएँ लिखीं।

इस कथानक को लेकर नाट्य प्रणयन करने वाले रचनाकारों में प्रमुख हैं, उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण व बीसवीं शती के प्रथम चरण में (1842-1918 ई.) रचना-कर्मरत गुजराती आशु कवि शङ्कर लाल। इन्होंने सात अङ्कों में '**सावित्रीचरितम्**' नामक नाट्य कृति की रचना की।

भारतीय विद्या भवन से 1951 ई. में आत्माराम शास्त्री प्रणीत रचना '**सावित्रीचरितम्**' प्रकाशित हुई। 1956 में इसी कथा को आश्रय बनाकर श्रीकृष्ण त्रिपाठी के द्वारा प्रणीत '**सावित्री**' नामक एकांकी नाटक प्रकाश में आया। '**सावित्री**' शीर्षक से तीन नाटिकाएँ भी लिखी गईं। एक के रचयिता नीलकण्ठ शास्त्री हैं, जो 1946 ई. में प्रकाशित हुई। 1978 ई. में ओगेटि परीक्षित शर्मा ने भी इसी नाम से नाटिका का प्रणयन किया। 1991 ई. में ब्रह्मदेव शास्त्री ने इसी शीर्षक से रचना का प्रणयन किया।

त्रिपुरविजय वृत्तान्त

मत्स्यपुराण के 129-140 अध्याय पर्यन्त अर्थात् 12 अध्यायों में त्रिपुर विजय की कथा सविस्तार वर्णित है। दानवों का शिल्पी मायावी मय युद्ध में देवताओं से पराजित हो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की घोर तपस्या में लीन हो गया। उसके इस कार्य में महाबली विद्युन्माली व महापराक्रमी तारक भी सहायक हुए। इन तीनों के कठोर तप से ब्रह्मा प्रसन्न हो प्रकट हुए व उनके अभीष्ट वर माँगने को कहा। उन्होंने एक ऐसे अभेद्य दुर्ग के निर्माण की इच्छा प्रकट की जो अग्नि, जल व वायु से अभेद्य हो, देवताओं व मुनियों के शस्त्रों व शापों से संरक्षित हो। ब्रह्मा के द्वारा यह कहे जाने पर कि असदाचारी के लिए सर्वामरत्व का विधान नहीं है; मय ने पुनः प्रार्थना की कि 'जो एक ही बार के छोड़े गए एक ही बाण से उस दुर्ग को जला दे, वही युद्ध में हमें मार सके, शेष प्राणियों से हम अवध्य हो जायेंगें। ब्रह्मा ने ऐसा ही होने का आशीर्वाद दिया।

ब्रह्मा के आशीर्वाद से मय ने पुष्य नक्षत्र के योग में सौ-सौ योजन विस्तार वाले व अन्तर्भाग में भी इतने

1. महाभारतम् , वनपर्व अ. 231

ही बाधक स्तम्भों से युक्त त्रिपुर की कल्पना की जिसका एक पुर भूतल पर लौहमय, दूसरा गगनतल में रजतमय व तीसरा रजतमय पुर से ऊपर सुवर्णमय होगा। ये तीनों पुर पुष्यनक्षत्र के योग में आकाश में परस्पर मिल जायेंगे। लौहमय दुर्ग का रक्षक तारक, रजतमय का विद्युन्माली व सुवर्णमय का मय होगा। इसी मनः सङ्कल्प से उसने इतने ही विस्तार वाले अद्‌भुत त्रिपुर का निर्माण किया। वहाँ दानवगण सुखपूर्वक निवास करने लगे। परन्तु कालक्रम से अलक्ष्मी, असूया, तृष्णा, बुभुक्षा, कलि और कलह इन सबने एकत्रितहोकर त्रिपुर में प्रवेश किया जिसके फलस्वरूप दानवों के दुर्गुण व उन दुर्गुणों के कारण उनके अत्याचार बढ़ने लगे। देवता वं ब्राह्मण त्रस्त हो गये। दुखित देवताओं ने ब्रह्मा की शरण ली व ब्रह्मा ने भगवान् शङ्कर का साहाय्य प्राप्त करने का उपाय सुझाया। समस्त दैवी शक्तियों ने संगठित हो शिव के लिये अद्‌भुत रथ का निर्माण किया। इस रथ पर आरूढ़ हो शिव ने त्रिपुर पर आक्रमण किया। घोर संग्राम हुआ। क्रमशः तारकासुर व विद्युन्माली मारे गए।

पुष्य नक्षत्र का योग होने पर तीनों पुरों के एक साथ मिल जाने पर शिव ने अपने उस अद्वितीय बाण से त्रिपुर का दहन कर दिया जिसकी नोक पर भगवान् विष्णु अवस्थित थे एवं जो अग्नि, सोम तथा नारायण की दिव्य प्रभा से समन्वित था। दानवराज मय शङ्कर का अत्यन्त भक्त था। अतः उसके प्रति अनुग्रह दृष्टि सम्पन्न होने के कारण दयालु भगवान् शिव ने नन्दीश्वर से मय को अपने नगर सहित भाग जाने की सूचना दिलवाई। त्रिपुर जल कर नष्ट हो गया। एकमात्र मय का भवन बचा जिसे इन्द्र ने शाप दिया कि यह किसी के द्वारा सेवन योग्य नहीं होगा, इसकी संसार में प्रतिष्ठा नहीं होगी। जिस-जिस देश की पराजय होने वाली होगी, उस-उस देश के विनाशोन्मुखी निवासी इस त्रिपुर खण्ड का दर्शन करेंगें।

असुर समुदाय का वध व त्रिपुर दाह के घटनाक्रम को समेटने वाला यह समस्त प्रसङ्ग अनेक काव्य कृतियों का उपजीव्य रहा है। 12वीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान मंखक ने अपने 25 सर्गों में निबद्ध महाकाव्य '**श्रीकण्ठचरितम्**' में इसी कथा को आधार बनाकर भगवान् शंकर व त्रिपुर के युद्ध का साहित्यिक वर्णन प्रस्तुत किया है।

तंजौर कैटेलॉग के क्रमांक 4036 के अनुसार तंजौर के भोसला नरेश एकोजी के अमात्य प्रवर नृसिंहाचार्य ने 16वीं शती के मध्यकाल के लगभग '**त्रिपुरविजयचम्पू**' की रचना की थी। 17वीं शती के लगभग नीलकण्ठ दीक्षित के सहोदर अतिरात्र याजी ने (तंजौर कैटलॉग 4037) भी इसी शीर्षक-'त्रिपुरविजयचम्पू' से चम्पू काव्य का प्रणयन किया था। आनंन्दयज्वा के पुत्र कवि शैल ने भी इसी शीर्षक से काव्य लिखा था।

19वीं शती में पद्मनाभ ने '**त्रिपुरविजयव्यायोग**' नामक रूपक की रचना की। 1959 में रामस्वरूप शास्त्री का 'त्रिपुरदाह कथा' नामक उपन्यास प्रकाश में आया है। 'त्रिपुरदाह-डिम' नामक एक अन्य रचना भी साहित्य कोश में उल्लिखित है, जिसके लेखक व रचनाकाल का ज्ञान नहीं हो सका।

अन्धकासुर वृत्तान्त

विभिन्न काव्यों एवं स्तोत्रों में जहाँ कहीं भगवान् शिव का वर्णन आता है वहाँ उनके विभिन्न चरितों को प्रकाशित करने वाले विभिन्न अभिधानों को कविगण प्रयोग किया करते हैं। '**स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं, गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे।।**' इत्यादि स्तुत्योल्लेख उनके इन्हीं वैशिष्ट्यों का ख्यापन करते हैं।

मत्स्यपुराण में उनके पुरान्तक अर्थात् त्रिपुर का दाह करने वाले त्रिपुरारि रूप का व अन्धकान्तक रूप का सविस्तार वर्णन है। इसके 179 वें अध्याय में अन्धक के दुश्चरित, शिव द्वारा उसके वध हेतु मातृकाओं की

सृष्टि, शिव के हाथों उसकी मुक्ति, उसे गणेशत्व की प्राप्ति, मातृकाओं की विध्वंसलीला व विष्णु द्वारा निर्मित देवियों द्वारा उनका अवरोध वर्णित है।

अन्धक दिति के गर्भ से उत्पन्न कश्यप ऋषि का पुत्र व एक सहस्र सिर वाला दैत्य था। नेत्र होते हुए भी यह मदान्ध होने के कारण अन्धों की तरह चलता था। आड़ि व बक इसके पुत्र थे। अवन्ति के महाकाल वन में क्रीड़ारत शंकर-पार्वती पर इसकी दृष्टि पड़ी। वह शिव के सामने ही देवी के अपहरण का प्रयास करने लगा। शंकर के पाशुपतास्त्र से घायल होने पर इसके रक्त से अनेक अन्धक पुत्र उत्पन्न हुए। शिव ने उद्विग्न होकर अनेक मातृकाएँ उत्पन्न की, पर उनके प्रयास व्यर्थ रहे। अन्त में उन्होंने वासुदेव का स्मरण किया जिन्होंने 'शुष्करेवती' नामक देवी की उत्पत्ति की जिसने क्षणमात्र में अन्धकों के रक्त को चूस लिया। तदनन्तर भगवान् शिव ने अपने त्रिशूल के अग्रभाग से प्रधान अन्धक को भेदने का प्रयास किया परन्तु वह भयार्त हो शिव की स्तुति करने लगा। आशुतोष शिव प्रसन्न हो गए व उन्होंने उसे अपना नित्य सामीप्य तथा गणत्व प्रदान कर दिया।

अन्धकासुर का यह वृत्तान्त **शिवपुराणादि** कई पुराणों में वर्णित है, पर मातृकाओं का नामसहित सविस्तार वर्णन जैसा यहाँ उल्लिखित है, वैसा अन्यत्र नहीं।

तारकासुर वृत्तान्त

मत्स्यपुराण के 146 अध्याय से लेकर 160 अध्याय पर्यन्त वज्राङ्ग की उत्पत्ति, उसके द्वारा इन्द्र का बन्धन, वज्राङ्ग के विवाह, ब्रह्मा द्वारा वरदान, उसे तारकासुर नामक सन्तान की प्राप्ति, उसका अभिषेक, तारकासुर की तपस्या, ब्रह्मा द्वारा उसे वरदान, देवासुर संग्राम, कालनेमि की पराजय, दानव सेनापति ग्रसन की मृत्यु, गजासुर, जम्भासुर की मत्यु, देवताओं का विष्णु सहित बन्दी बनाया जाना, तारक के आदेश से देवताओं की बन्धन मुक्ति, देवताओं की ब्रह्मा से प्रार्थना, ब्रह्मा द्वारा तारकवध के उपाय का वर्णन, पार्वती-जन्म, काम-दहन, रति की प्रार्थना, पार्वती की तपस्या, शिव-पार्वती विवाह, पार्वती का वीरक को पुत्र रूप में स्वीकार करना, भगवान् शिव द्वारा पार्वती के वर्ण पर आक्षेप, पार्वती का वीरक को अन्तःपुर का रक्षक नियुक्त कर तपश्चरण हेतु जाना, आडि दैत्य का स्त्रीरूप में वहाँ प्रवेश, शङ्कर द्वारा उसका मारा जाना, पार्वती का वीरक को शाप, शङ्कर-पार्वती समागम, अग्नि को शाप, कृत्तिकाओं की प्रतिज्ञा, स्कन्द की उत्पत्ति, उसके पास देवताओं की प्रार्थना, प्रार्थना स्वीकार कर तारक के पास सन्देश, स्कन्द व तारकासुर का युद्ध व तारक वध आदि विस्तृत कथा भाग को समेटने वाला यह पौराणिक कथांश विशेष शिवपार्वती वर्णनपरक ग्रन्थों के लिए अवश्यमेव ग्राह्य रहा होगा।

राजवंश, गोत्र-प्रवरादि वर्णन

मत्स्यपुराण में विभिन्न प्राचीन भारतीय राजवंशों यथा सूर्यवंश, चन्द्रवंश, यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु, पूरु, भरत, अग्नि, वृष्णि वंशादि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। अङ्गिरा, भृगु, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, वसिष्ठ, पराशर, अगस्त्य, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, धर्म आदि ऋषियों के गोत्र प्रवरानुकीर्तन की पर्याप्त सामग्री यहाँ उपलब्ध है। पौराणिक ऐतिहासिक विषय को लेकर ग्रन्थ लिखने वाले ग्रन्थकारों जिनमें कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी, शिवाजी सामन्त, ब.व. खाण्डेकर, चतुरसेन शास्त्री आदि का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है, के लिये यह अंश विशेषतः उपजीव्य रहा है। अगस्त्य, लोपामुद्रा, परशुराम, वयं रक्षामः आदि शीर्षकों से उपन्यासों को लिखने वाले कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, चतुरसेन शास्त्री ने ऋषिचरित वर्णन के लिए निश्चय ही मत्स्य व अन्यान्य पौराणिक सामग्री का अध्ययन किया होगा।

निष्कर्षतः इस समग्र आलेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि **मत्स्यपुराण** ज्ञान की गम्भीर राशि समाहित किए, अनेक अमूल्य वैचारिक रत्नों से परिपूर्ण पौराणिक ग्रन्थ विशेष है जिसमें पुराण का प्रमुख लक्षण "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् " पूर्णतया घटित होता है। सृष्टि के प्रारम्भिक पौराणिक वृत्त मत्स्यातार से लेकर दक्षिण के आन्ध्रवंशी राजाओं (लगभग 225 ई.) के वृत्त को समेटने वाला, अनेक प्राचीन आख्यानों, तदन्तर्गत आने वाले वंशवृतों, मन्वन्तरों व प्रसिद्ध राजवंशों, ऋषियों के गोत्र-प्रवरादि का, तीर्थों, श्राद्ध, व्रतानुष्ठानों का वर्णन करने वाला यह पुराण विशेष गम्भीर जिज्ञासु जनों द्वारा शोध दृष्टि से अनेकशः आलोडित किये जाने योग्य है। जहाँ तक उपजीव्यता का प्रश्न है तो कोई भी परवर्ती ग्रन्थकार किसी विषय विशेष पर कथा, नाट्य व काव्यादि लिखने से पूर्व तद्विषय से सम्बन्धित यथासम्भव समग्र उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करता है व ग्राह्य अंशों को ग्रहण करता है।

प्रस्तुत शोधपत्र में जिन कृतियों का उल्लेख किया गया है, उन ग्रन्थकारों ने तद्-तद् विषय पर लेखनी चलाने से पूर्व निश्चय ही महाभारतादि समेत पौराणिक ग्रन्थों का अध्ययन किया होगा। जैसे मधुकरिका विभिन्न पुष्पों से मधुसञ्चयन करती है वैसे ही ग्रन्थकारों ने भी इस पुराण विशेष का अध्ययन किया होगा। इसके प्रमाण हैं, स्वयं उन ग्रन्थों के पाठ। इस अर्थ में इसकी उपजीव्यता निःसन्दिग्ध है।

•